कार्य, ध्यान और संन्यास

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि यह कैसा संन्यास है आपका, कि आदमी घर में रह रहा है? पत्नी भी, बच्चे भी, यह कैसा संन्यास है आपका? कल्याण के एक मित्र ने संन्यास लिया। वे बंबई बिचारे काम करने आते थे। मेरे पास आए एक दिन अपनी पत्नी को लेकर, कहा, अब इसको भी संन्यास दे दें। मैंने पूछा, मामला क्या है? उन्होंने कहा, मामला यह है कि इसके साथ मैं कहीं जाता हूं तो लोग बड़ी शक की नजर से देखते हैं कि यह संन्यासी किसकी स्त्री को भगा ले आया? कई लोग पूछते हैं कि यह बाई कौन है? और इस तरह पूछते हैं जैसे कि मैं कोई अपराध कर रहा हूं। और अगर मैं कहता हूं मेरी पत्नी है, तो वे मुझे इस तरह से देखते हैं कि तुम होश में हो? पागल तो नहीं हो? संन्यासी, पत्नी कैसे? मैंने कहा, ठीक, इसका भी संन्यास कर देते हैं।

एक सप्ताह बाद अपने बेटे को भी लेकर आए, छोटे बच्चे को, कि अब इसको भी संन्यास दे दें। मैंने कहा, इसका क्या मामला है? उन्होंने कहा, अब हम दोनों इसके साथ कहीं जाते हैं, तो लोग सोचते हैं कि किसी के बच्चे को ले भागे। खबरें तो उड़ती रहती हैं न साधु किसी के बच्चे को लेकर भाग गए, बच्चों को उड़ाया जा रहा है। तो उन्होंने कहा, कल बड़ी झंझट हो गई, ट्रेन में बैठे थे, एक पुलिसवाला आ गया, उसने कहा कि नीचे उतरो, थाने चलो, यह बच्चा किसका है? कहां ले जा रहे हो?

धारणा बन गई है कि संन्यासी का मतलब होता है—भगोड़ा, पलायनवादी, सब छोड़-छाड़ कर चला जाए।

संन्यासी का यह अर्थ नहीं होता। संन्यासी का अर्थ होता है : सब उस पर छोड़ दे। छोड़-छाड़ कर न चला जाए! छोड़-छाड़ कर क्या जाना? वह तो फिर नया अहंकार हुआ कि मैं छोड़ कर जा रहा हूं, मैं संन्यासी। वह तो फिर नई बंधन की व्यवस्था हो गई। नई जंजीरें ढाल लीं तुमने। और ध्यान रखना, पुरानी जंजीरें बेहतर थीं, नई ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि पहला अहंकार स्थूल था, अब बड़ा सूक्ष्म अहंकार होगा कि मैंने सब छोड़ दिया! लाखों पर लात मार दी! पत्नी-बच्चे छोड़ दिए, संसार छोड़ दिया, मैंने बड़ा काम करके दिखाया है। तुम भगवान के सामने और भी बड़े दावेदार हो गए, तुम्हारा दावा नहीं मिटा। अब अगर भगवान तुम्हें मिल जाए तो तुम हजार शिकायतें करोगे—कि अन्याय हो रहा है मेरे साथ, मैंने इतना छोड़ दिया और अभी तक मेरा मोक्ष नहीं हुआ है। अभी तक स्वर्ग का कुछ पता नहीं है, अभी तक अप्सराएं नहीं मिलीं। कहां है अप्सराएं? कहां हैं झरने शराब के? बहिश्त कहां है? और क्या चाहिए अब, सब तो छुड़वा दिया! सब तो दांव पर लगा दिया, बचा तो कुछ भी नहीं है।

कुछ भी दांव पर नहीं लगा है। तुमने कुछ छोड़ा भी नहीं।

छोड़ने को अर्थ होता है : परमात्मा पर सब छोड़ना। परमात्मा फिर जैसे जिलाए! वह अगर कहे कि घर में रहो, पत्नी के साथ रहो, बच्चे के साथ रहो, तो ठीक! और यही मेरी दृष्टि में क्रांति है। तुम सब उस पर छोड़ दो। दुकान करवाए तो दुकान ठीक।

कबीर ज्ञान को उपलब्ध हो गए, समाधि को उपलब्ध हो गए, लेकिन कपड़ा बुनते रहे। जुलाहे थे सो जुलाहे रहे। शिष्यों ने बहुत बार कहा कि हमें बड़ा अशोभन लगता है, हमें बड़ी पीड़ा होती है, कि हमारा गुरु और दिन भर कपड़ा बुनता रहे। आप छोड़ते क्यों नहीं? हम भोजन देंगे, व्यवस्था सब हम करेंगे, हम हमेशा तैयार हैं सेवा के लिए, आप छोड़ते क्यों नहीं?

कबीर कहते : लेकिन वह छुड़वाएं तो छोड़ूं! वह तो मेरे कपड़े बुनने से बिलकुल राजी है। उसकी तरफ से तो इशारा ही नहीं आता। वह तो मेरे कपड़ों से बड़ा प्रसन्न है। और जब मैं बाजार ले जाता हूं अपने कपड़े बेचने तो वह बड़े खुश होकर खरीदता है। राम खरीदने आते हैं—कबीर कहते थे। और मैं न बनाऊंगा तो उनके लिए इतने सुंदर कपड़े कौन बनाएंगा? झीनी झीनी बीनी रे चदरिया। वे चादर बुनते हैं और गीत गाते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में गीत बुनते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में रामरस बुनते है। यह चादर और है। अब यह चादर ही नहीं है, यह अर्पित व्यक्ति के हाथ से बुनी गई चादर है। काम वही जारी

> *झीनी झीनी बीनी रे चदरिया। वे चादर बुनते हैं और गीत गाते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में गीत बुनते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में रामरस बुनते है। यह चादर और है। अब यह चादर ही नहीं है, यह अर्पित व्यक्ति के हाथ से बुनी गई चादर है*

रहा। गोरा कुम्हार ज्ञान को उपलब्ध हो गया, लेकिन कुम्हार ही रहा, घड़े बनाता ही रहा।

तुलाधर वैश्य को कथा आती है। ज्ञान को उपलब्ध हो गया, ब्रह्मज्ञान को, लेकिन तौलता रहा; तराजू पर बैठा रहा; जो काम जारी था, जारी रहा।

जिसने अपने को अर्पित कर दिया, अब उसकी कोई मंशा नहीं है। अब जो परमात्मा करवाएगा करवाएगा। नहीं करवाएगा तो नहीं करवाएगा। लेकिन अपनी तरफ से अब हम कुछ भी न करेंगे। जो उसकी तरफ से आता रहेगा, उसे होने देंगे, हम उसके सहयोगी रहेंगे, हम उसके लिए निमित्त रहेंगे।

कृष्ण की गीता कुल सार इतना है—इस सूत्र में आ गया—अबन्धः अर्पणस्य मुखम्। इतनी ही बात कृष्ण ने उतनी लंबी गीता में कही है, जो शांडिल्य ने एक सूत्र में कह दी है। अर्जुन को यह समझाया है कि तू अर्पित हो जा, सब उस पर छोड़ दे, तू निमित्तमात्र रह जा। वह युद्ध करवाए तो युद्ध कर, वह जो करवाए सो कर, तू अपने को बीच में न ला। तू निर्णायक मत बन। तेरा निर्णायक बनना ही तेरा संसारी होना है। तू अनिर्णायक हो गया, सिर्फ ग्राहक रह गया उसके संदेशों का—वही संन्यास है।

ध्याव नियमः तु दृष्टसौकर्यात्।

'जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त होते हों, उसी भाव के चिंतन करने का नाम ध्यान है।'

महत्वपूर्ण सूत्र है, खयाल में लेना।

अधिकतर लोग ध्यान, पूजा-पाठ, प्रार्थना जबरदस्ती आरोपित करते हैं। वह उचित नहीं है। जबरदस्ती आरोपण से कुछ भी न होगा। सहज स्वभाव का प्रवाह होना चाहिए। लेकिन उपद्रव इसलिए हो गया है कि जन्म के साथ तुम्हें धर्म भी पिला दिया गया है। मां ने दूध के साथ तुम्हें धर्म भी पिला दिया है। कोई आदमी जैन घर में पैदा हुआ है। अब इसके भीतर हो सकता है भक्ति की उमंग सहज हो, मगर यह महावीर के सामने नाचे तो कैसे नाचे? वह महावीर नग्न खड़े हैं, वहां नृत्य का कोई अर्थ नहीं है। यह महावीर के सामने गीत गाए तो कैसे गाए? वह गीत बिलकुल बेमौजूं मालूम होता है। गीत कृष्ण के सामने गाया जा सकता है, और कृष्ण के सामने नाचा जा सकता है। जरा सोचो, अगर मीरा महावीर की भक्त हो, तो नाचे कैसे? पैर कट जाएंगे।

लेकिन कोई कृष्ण के घर में पैदा हुआ है, कृष्ण को मानने वाले लोगों के घर में पैदा हुआ है। और हो सकता है उसको नाचने और गीत और भजन और कीर्तन में कोई रस न हो, उसे रस हो कि शांत बैठ जाए जैसे बुद्ध बैठ गए; कि शांत खड़ा हो जाए जैसे महावीर खड़े हैं। मगर अड़चन आ गई है।

जिससे तुम्हारा लग जाए हृदय, लग जाने देना। चल पड़ना। फिर दुनिया कुछ भी कहे! दुनिया की फिकर मत करना। जिससे तुम्हें रस बहे, उसी से तुम पहुंचोगे। रसधार में सम्मिलित हो जाओगे तो परमात्मा के सागर तक पहुंचोगे

तुम्हारे सहज स्वभाव को देख कर तुम्हारा धर्म नहीं है। तुम्हारा धर्म तो सांयोगिक है। किसी घर में पैदा हो गए, धर्म तुम्हारा पकड़ा दिया गया।

जिस व्यक्ति को सच में ही परमात्मा की तलाश करनी हो, उसे अपने स्वभाव की पहले तलाश करनी होती है—कि मेरी स्वाभाविक, सहज रस की धारा किस तरफ बहती है? जिसने अपने स्वभाव को ठीक से समझ लिया, उसके लिए कठिनाई न रह जाएगी।

'जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त होते हो।'

दोनों तरह के नेत्र। बाहर के नेत्र और भीतर के नेत्र। अब कोई हो सकता है कृष्ण के रूप में एकदम तल्लीन हो जाए। और यह भी हो सकता है किसी को कृष्ण का रूप देख कर बड़ा कष्ट हो। कोई सोचने लगे कि यह कैसा भगवान? यह मोरमुकुट बांधे खड़ा है! यह तो बड़े राग की दशा है। यह सजावट, यह शृंगार, इसमें वीतरागता कहां है? यह गोपियों का नृत्य, यह स्त्रियों का जमघट चारों तरफ, यह रासलीला, यह कैसा भगवान है? इसलिए जैनों ने कृष्ण को भगवान नहीं माना। कैसे मान सकते हैं? उनकी धारणा में वीतरागता भगवत्ता है। और ऐसा नहीं है कि उनकी धारणा गलत है। एक तरह के लोग हैं इस दुनिया में जिनके लिए वीतरागता ही भगवत्ता है। और एक तरह के ऐसे लोग भी हैं इस जगत में जिनके लिए राग का पूर्ण हो जाना भगवत्ता है। इस जगत में भिन्न-भिन्न तरह के लोग है। यहां बहुत तरह के फूल खिलते हैं इस बगीचे में। और यही इस बगीचे की गरिमा है, गौरव है। यहां गुलाब ही गुलाब खिलते होते तो लोग गुलाब से ऊब गए होते। यहां चंपा, जूही, चमेली, और भी हजार तरह के फूल खिलते हैं। नये रंग, नये ढंग। अपनी पसंद को ठीक से सोच लेना।

शांडिल्य कहते हैं : जिससे तुम्हारी बाहर की आंखें तृप्त हो, उसी से तुम्हारी भीतर की आंखें भी तृप्त होंगी, खयाल रखना। इसलिए और कोई धारणाओं को बीच में मत आने देना। जिससे तुम्हारा लग जाए हृदय, लग जाने देना। चल पड़ना। फिर दुनिया कुछ भी कहे! दुनिया की फिकर मत करना। जिससे तुम्हें रस बहे, उसी से तुम पहुंचोगे। रसधार में सम्मिलित हो जाओगे तो परमात्मा के सागर तक पहुंचोगे।

'जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त हो, उसी भाव से चिंतन करने का नाम ध्यान है।' पहले बाहर, फिर भीतर। पहले बाहर के नेत्र तृप्त हों—और नेत्र तो सिर्फ प्रतीक हैं, संकेत मात्र।

अब यहां मेरे पास इतने तरह के लोग हैं। किसी को विपस्सना ठीक पड़ती है। शांत बैठना। किसी को विपस्सना ऐसी लगती है कि यह कहां के

कारागृह में फंस गए! किसी को सूफी नृत्य आनंद देता मालूम पड़ता है। नाच-गीत! अपनी अवस्था को पहले जांच लेना। क्योंकि तुम्हें जाना है परमात्मा तक। ऐसी कोई बात मत चुन लेना जो तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती मालूम पड़े। और अक्सर ऐसा हो गया है कि लोग ऐसी बातें चुनते हैं जो जबरदस्ती है। अक्सर ऐसी बातें चुनते हैं जिनमें जबरदस्ती है क्योंकि जबरदस्ती के कारण उनको ऐसा लगता है—कुछ तपश्चर्या कर रहे हैं। मूढ़ता कर रहे हो, तपश्चर्या नहीं! कुछ लोग सिर के बल सिर्फ इसलिए खड़े हैं कि सिर के बल खड़े होने में बड़ा कष्ट होता है। कष्ट के कारण ही चुन लिया है। क्योंकि धारणा यह बैठी है कि कष्ट से ही परमात्मा मिलेगा।

पागल हो तुम। परमात्मा को पाने के लिए किसी तरह के कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। अगर तुम कष्ट उठाते हो, तो उसका केवल इतना ही कारण है कि तुम अपने स्वभाव के विपरीत जाते हो; इसलिए कष्ट उठाते हो। और परमात्मा को पाना हो तो स्वभाव के अनुकूल जाना जरूरी है। जैसे-जैसे परमात्मा के पास जाओगे, सुख बढ़ेगा, कष्ट कम होगा, जीवन में धीरे-धीरे एक शांति की आभा उतरेगी, एक आनंदमग्न भाव आएगा, एक मस्ती आएगी। लेकिन लोगों ने कष्टप्रद बातों को चुन लिया है। उससे एक लाभ होता है, अहंकार की तृप्ति होती है। कोई उपवास कर रहा है, उससे अहंकार तृप्त होता है कि देखो, तुम खाने के पीछे दीवाने हो, मरे जाते हो, एक मैं हूं कि आज तीस दिन में उपवासा बैठा हूं। अब झुको मेरे पैर में! अब करो नमस्कार! अब निकालो शोभायात्रा, कि मुनि महाराज ने तीस दिन का उपवास किया!

अगर उपवास से किसी को आनंद आ रहा है, तो शोभायात्रा की क्या जरूरत है? अगर उपवास से किसी को आनंद आ रहा है, तो उनके चरणों में झुकने की क्या जरूरत है? लोग चरणों में तभी झुकते हैं यहां जब उन्हें लगता है कि बेचारा बड़ा कष्ट उठा रहा है! बड़ी तपश्चर्या चल रही है!

परमात्मा की तलाश में तपश्चर्या तुम्हारी भूलों के कारण है, तुम्हारी गलतियों के कारण है। तुम कष्ट उठाते हो तो अपनी नासमझी के कारण उठाते हो। लेकिन परमात्मा के मार्ग पर सुख ही सुख है। ठीक कहते है रामकृष्ण, कि मैं भोगी हूं। मैं भी तुमसे कहता हूं : मैं भोगी हूं और मैं तुम्हें भी महाभोगी बनाना चाहता हूं।

अपने को कष्ट देना मनोवैज्ञानिक रूप से रोग है। तुम जाकर मनावैज्ञानिकों से पूछो। उन्होंने एक बीमारी को नाम ही दे रखा है—मैसोचिज्म। ऐसे लोग हैं दुनिया में जो अपने को कष्ट देने में रस लेते हैं; जो अपने जीवन में घाव बनाने में रस लेते हैं; अपने को परेशान करने में रस लेते हैं। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो जो दूसरों को परेशान करने में रस लेते हैं और एक वे जो अपने को परेशान करने में रस लेते हैं। दोनों बीमार हैं। न तो दूसरे को परेशान करने की कोई जरूरत है, न खुद को परेशान करने की कोई जरूरत है। अपने स्वभाव को ठीक से पहचान लो और सहज की दशा में यात्रा करो। तुम निश्चित पहुंच जाओगे। तुम पहुंचे हुए हो, सिर्फ स्वभाव को पहचानने की बात है।

ध्याव नियमः तु दृष्टसौकर्यात्।

जिससे तुम्हारे नेत्र तृप्त हों, जिससे तुम्हारे प्राण तृप्त हों, वही ध्यान है। वही मार्ग है। जिससे सुख अहर्निश बढ़े, दिन-दिन बढ़े; दिन दूना रात चौगुना बढ़े, वही ध्यान है।

इस सूत्र की क्रांति समझते हो?

यह तुम्हारे जीवन के सारे रोगों से मुक्ति दिला देगा। काश, फ्रायड ने इस सूत्र को पढ़ा होता, तो वह धार्मिकों के खिलाफ इतनी बातें न लिखता जितनी उसने लिखीं। क्योंकि उसे धार्मिकों का केवल उतना ही पता था जितना ईसाई फकीर अपने को सताते रहे हैं। कोई अपनी आंखें फोड़ लेता है। कोई अपनी जननेंद्रिय काट लेता है। कोई अपने कान फाड़ लेता है। कोई अपने शरीर को सुखा लेता है। कोई धूप में ही खड़ा रहता है। कोई कांटों की सेज बिछा कर लेटा हुआ है। ये भगवान को पाने के उपाय हो रहे हैं! किसी ने त्रिशूल अपने मुंह में छेद लिया है। कोई खड़ा है तो वर्षों से खड़ा ही है, बैठता नहीं है। कोई रात में सोता नहीं है, जाग ही रहा है। ये रुग्णचित्त की अवस्थाएं हैं। ये विक्षिप्त लोग हैं। इनकी मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। इनकी शोभायात्राएं मत निकालो, इनको अस्पतालों में भरती करवाओ। इनको इलेक्ट्रिक शॉक दिलवाओ। इनकी बुद्धि विकृत है। यह तपश्चर्या नहीं हो रही है, ये केवल अपने को दुख देने में मजा ले रहे हैं। मगर दूसरों को भी मजा आता है। क्योंकि दूसरे भी दुखवादी हैं। दूसरे जब अपने को दुख देते हैं, तुमको भी मजा आता है। तुम भी देखने चले जाते हो। तुम्हें भी बड़ा रस आता है। तुम सुखी आदमी को देख कर प्रसन्न नहीं होते, तुम सुखी आदमी को देख कर थोड़े नाराज हो जाते हो। तुम दुखी आदमी को देख कर प्रसन्न होते हो, क्योंकि दुखी आदमी से तुम्हें एक बात पता चलती है कि इससे तो हम ही ज्यादा सुखी हैं। एक राहत मिलती है, कि चलो हम बेहतर तो! जब सुखी आदमी मिलता है तो तुम्हें ईर्ष्या जगती है। सुखी के साथ आनंदित होना कठिन है, इसीलिए सुखी व्यक्तियों की पूजा नहीं हुई। दुखी व्यक्तियों की पूजा चलती रही है।

मैं तुम्हें संन्यास की एक नई दृष्टि दे रहा हूं। सुख त्याज्य नहीं है। सुख का ही सूत्र तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाएगा। अपने स्वभाव के अनुकूल जो हो, वही करो। क्योंकि स्वभाव परमात्मा है।

मैं तुम्हें संन्यास की एक नई दृष्टि दे रहा हूं। सुख त्याज्य नहीं है। सुख का ही सूत्र तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाएगा। अपने स्वभाव के अनुकूल जो हो, वही करो

— ओशो

अथातो भक्ति जिज्ञासा, दूसरा भाग,
पच्चीसवां प्रवचन
(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)